International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 19-01-2026; Accepted: 18-02-2026; Published: 05-03-2026
Volume 12, Issue 1, 2026, Page No. 190-193

लक्ष्मीनारायण रंगा के कथा–साहित्य में नारी विमर्श

विजयलक्ष्मी व्यास[1], डॉ. अशोक धारनिया[2]
[1] शोधार्थी, टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर, राजस्थान, भारत
[2] सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर, राजस्थान, भारत

सारांश
लक्ष्मीनारायण रंगा की कहानियों में नारी जीवन के विभिन्न आयामों का उल्लेख मिलता है। उनकी कहानियों में पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन के उलझे तानों–बानों में अपने दायित्व निवर्हन के बोध व बोझ से दबी हुई, अपने अन्तरंग व बहिरंग घुटन और अन्तर्द्वन्द्वों से संघर्षरत नारी पात्रों के जीवंत चरित्र–चित्रण देखने को मिलते हैं। वर्तमान समय में कामकाजी महिला के रूप में नारी का कार्यक्षेत्र बढ़ गया है, उस पर अब घर और कार्यालय दोनों जगह संतुलन बनाये रखने की जिम्मेदारी है। नारी के कार्यक्षेत्र में विस्तार होने के बावजूद भी समाज अभी भी स्त्री–पुरूष में भेदभाव के आधार पर व्यवहाकर करता है। लैंगिक भेदभाव आज भी किसी न किसी रूप में नारी के लिए पीड़ा दायक है। रंगा के कहानी के नारी पात्रों में इसके विरूद्ध प्रतिरोध के स्वर भी सुनाई देते हैं। नारी को मात्र उपभोग की वस्तु मानने के विरूद्ध विद्रोही स्वर भी रंगा जी की कहानियों में सुनाई देता है। आज भी नारी के सहज हास–परिहास और जीवन शैली को समाज की दूषित व संकीर्ण सोच के कारण संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। उसके चरित्र पर प्रश्न चिह्न लगाया जाता है। परिवार और समाज में नारी को पुत्री, पत्नी, बहन और माता आदि के रूप में सम्मान और स्वीकृति मिलती है किन्तु इन संज्ञाओं से इतर एक नारी के रूप में उसकी स्थिति आज भी अनेक चुनौतियों से भरी हुई है। रंगा जी की कहानियों में दहेज, पर्दा प्रथा, बाल विवाह जैसी सामाजिक बुराईयों पर कटाक्ष किया गया है और यह दिखाया गया है कि इन सामाजिक बुराईयों का मूल्य भी अन्ततः नारी को ही चुकाना पड़ता है। लक्ष्मीनारायण रंगा के कथा साहित्य में नारी विमर्श को इसी परिप्रेक्ष्य में विवेचना करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है।

मूल शब्दः नारी–विमर्श, पारिवार, समाज, पुत्री, पत्नी, बहन, माता, शोषण, लैंगिक भेदभाव, कामकाजी, उपभोग महिला, स्त्री, दहेज, पर्दा–प्रथा, देहरी, बाल विवाह, संकीर्णता

प्रस्तावना
लक्ष्मीनारायण रंगा का साहित्य सृजन विविध विधाओं में तथा बहुआयामी रहा है। उनकी ख्याति उनके लोकप्रिय नाट्य–साहित्य के कारण मूलतः नाटककार के रूप में अधिक है तथापि उनके कथा साहित्य का क्षेत्र व्यापक होने के साथ–साथ प्रभाव पूर्ण भी हैं। उनके द्वारा रचित कथा साहित्य लगभग 28 कथा–संग्रहों के रूप में संकलित है। प्रस्तुत शोध–पत्र में श्री रंगा के कथा साहित्य के उन कहानियों को आधार बनाया गया है जिनमें नारी पात्रों के माध्यम से एक कथाकार के रूप में उनके द्वारा नारी जीवन के विभिन्न पक्षों को दर्शाया गया है। रंगा द्वारा लिखित विभिन्न कहानियों के नारी पात्रों के माध्यम से नारी की स्थिति का पारिवारिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में चित्रण उल्लेखनीय हैं। साथ ही साथ उसके स्वयं के अस्तित्व के इर्द गिर्द चिंतन तथा चेतन, अवचेतन स्थिति का विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य
हिन्दी कथा साहित्य में मुंशी प्रेमचन्द से लेकर आधुनिक समय के अनेक लेखकों ने नारी जीवन की समस्याओं और संघर्ष पर अपनी लेखनी चलाई है। इस दिशा महिला लेखिकाओं ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने नारी मन के अन्तर्द्वद्वों एवं आप बीती घटनाओं को अपनी लेखनी का विषय बनाया। समाज की पितृ–सत्तात्मक संरचना के कारण नारी की दोयम दर्जे की स्थिति और उसकी कसक इनकी रचनाओं में अभिव्यक्ति पाने लगी। नारी की दयनीयता, पर–निर्भरता, कातरता और कुण्ठा आदि का विश्लेषण किया जाने लगा। स्त्री और पुरुष दोनों ही जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिए हैं। किसी एक के बिना न तो जीवन की कल्पना की जा सकती है, न ही परिवार और समाज की। होना तो यह चाहिए था कि वे परस्पर समकक्ष सम्मान और प्रतिष्ठा के अधिकारी होते। उनके अधिकार और कर्तव्य भी समान ही होते, किन्तु पितृसत्तात्मक पारिवारिक व सामाजिक ताने बाने के कारण ये संभव न हो सका। परिणामतः स्त्री–विमर्श चिन्तन और चिन्ता का ज्वलंत विषय आज भी बना हुआ है।
प्रस्तुत शोध–पत्र में नारी विमर्श को केन्द्र में रखकर लक्ष्मीनारायण रंगा की मुख्यतः तीन कहानी संग्रहों यथा– "पीळा पत्ता", "हत्या एक हंसी की" तथा "अंधेरों का अन्त" से कहानियों का चयन किया गया है। "पीळा पत्ता" कहानी संग्रह से 'मूळक' कहानी, "हत्या एक हंसी की" कहानी संग्रह से 'कसक', 'चेतना', 'न्यायालय खामोश था' 'नहले पे दहला', 'हत्या एक हँसी की" तथा 'नहीं.....' आदि कहानियों को लिया गया है। "अंधेरों का अन्त" कहानी संग्रह से 'ईंट का जवाब पत्थर', 'उठ गये पर्दे', 'जात न पूछो मानव की', 'मिट गई मौत की प्रथा' आदि कहानियें का चयन किया गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में शोधार्थी के अध्ययन का उद्देश्य लक्ष्मीनारायण रंगा के कथा–साहित्य में नारी–विमर्श है।

विषय वस्तिार
हिन्दी कथा साहित्य में नारी की प्रास्थिति को स्वतंत्रता–पूर्व काल व स्वातंत्र्योत्तर काल–विशेष रूप से औद्योगीकरण काल के सापेक्ष देखें तो यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि औद्योगीकरण व शिक्षा के परिणाम स्वरूप स्त्रियों को विशेष रूप से शिक्षित स्त्रियों को घर से बाहर निकलने का अवसर मिला। यह अवसर संयुक्त परिवार के घटने व एकल परिवार के बढ़ने के कारण मध्य–वर्ग और निम्न मध्य–वर्ग की आवश्यकता भी थी। बीसवी शताब्दी के अंतिम दशक में भूमण्डलीकरण के परिणाम स्वरूप नारियों के घर की चार–दीवारी से बाहर निकलने के अवसरों में भी वृद्धि हुई। नारी ने लगभग सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा व कौशल से अपना स्थान बना लिया। उनके लिए कोई क्षेत्र वर्जित क्षेत्र नहीं रहा।

परिणामतः उनमें स्वावलंबन बढ़ा और उनमें अपने अस्तित्व के प्रति पितृ–सत्तात्मक सोच और नियम कायदों के खण्डन के लिए साहस और संबल मिला। इस दिशा में बीसवी सदी के उत्तरार्द्ध में महिला कहानीकारों ने भी नारी मन की गहराईयों, अन्तर्द्वन्द्वों तथा अनेक समस्याओं पर लेखनी चलाई। आज नारी समाज में सभी क्षेत्रों मे अपनी भागीदारी निभा रही है। वह पुरुष की भाँति समानता और स्वतंत्रता की कुछ हद तक तो हकदार हो गई है लेकिन वह संपूर्णता में इसी पाना चाहती है। समाज के पितृ–सत्तात्मक पारंपरिक बेड़ियों को तोड़ना चाहती है। नारी के शोषण और दमन के विरूद्ध विद्रोही स्वर नारी विमर्श का आधार है।

कामकाजी महिलाओं की दोहरी भूमिका का संघर्ष

औद्योगीकरण व शिक्षा के परिणाम स्वरूप महिलाओं को घर की चारदीवारी से बाहर निकलने का अवसर तो मिला किन्तु घर के भीतर की उनकी जिम्मेदारियों में कोई कमी नहीं आई। घर की जिम्मेदारी निभाने की भी उन्ही से ही अपेक्षा की जाती है। मध्य–वर्ग और निम्न मध्य–वर्ग की महिलाओं के लिए घर को आर्थिक रूप से संबल देने के लिए घर से बाहर निकल कर नौकरी चाकरी करना धीरे–धीरे आवश्यकता बन गई। परिणामतः कामकाजी महिला के रूप में अब उन्हें दोहरी भूमिका का निर्वहन करना पड़ता है।

लक्ष्मीनारायण रंगा की महानियों में कामकाजी महिलाओं की दोहरी भूमिका के कसमकश का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है। कहानी 'मुळक' की 'सीता' की इस दोहरी जिम्मेदारी की पीड़ा को कहानी कार इस प्रकार व्यक्त करते हैं– "सीता अे काम निमटावती ई ही के चन्द्र हर रूपा स्कूल सूं आयगा। झटाझट आप री ड्रेसा–जुता खोल' र फेक्यां, बसता नाख्या र बारै बे जा, बै जा। सीता झुझळाई। बाप अर बेटा–बेटी सै अेकै ई ढाळै। आप ई आवते ई कोट–पैंट–टाई यू ही बिखेर दै। एक बूंट अठे तो दूजौ बांडे कनै। बा अेकलड़ी कांई–कांई करे। दफ्तर जावणै सू पैला साफ–सफाई, चाय–नास्तों, सगळा रा कपड़–जूता ठीक–ठाक करणा। बेटे–बेटी ने न्हावा–धोवा' र स्कूल खातर तैयार करणा। रसोई बणवणी र सगळा रा टिफन त्यार करणा। खुद ने तो तयार हुवणै रो मौको ई नी मिलै। बस फटाफट कपड़ा पैर' र दफ्तर भाजणौ। इध कामां में कैई बार दफ्तर देरी सूं पोचती तो अफसर री उल्टी–सीधी बातां सुणनी–सेवणी पड़ती।[1] कहानी 'मूळक' की सीता का जीवन एक कामकाजी महिला के संघर्ष की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है।

कामकाजी महिला होने का एक दूसरा ही पक्ष कहानी 'कसक' में कहानी की नायिका के जीवन में देखने को मिलता है। आर्थिक रूप से अपनी कमाने वाली पुत्री पर निर्भर पिता लोभ और कठोरता के कारण पुत्री का जीवन ही दांव पर लगा देता है। सामान्यतः कोई भी पिता अपनी पुत्री के विवाह के लिए, उसके सुखद वैवाहिक जीवन के लिए अपना तन, मन धन–सब कुछ–दांव पर लगा देता है, लेकिन पुत्री द्वारा किये जाने वाले अर्थोपार्जन से अपने और अपने परिवार का पालन–पोषण करने के लिए पुत्री की इच्छाओं का गला घोंट देना कहां तक उचित है?

'कसक' कहानी की नायिका एक समाज सेविका होती है जो अपने पूर्व प्रेमी से अपने विवाह न कर पाने का कारण बताते हुए अपने पिता के कथन का उल्लेख करती है– ".....जब मैंने तुमसे शादी का प्रस्ताव रखा तो वे (पिता) साफ मुकर गये। बोले में तुम्हारी शादी नहीं करूँगा। अगर शादी कर दूंगा तो घर कैसे चलेगा? नहीं नहीं तुम्हें परिवार के लिए शादी नहीं करनी है।' यह सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ। मैं सोच ही नहीं सकती थी कि कोई पिता अपने स्वार्थ के कारण अपनी ही बेटी की शादी करने से भी मना कर सकता है। मैंने समझाने का प्रयास किया तो बोले– 'इधर तुम्हारी डोलही आएगी, उधर मेरी अर्थी निकलेगी।' 'ओह!' एक दर्द भरी शांस छोड़ी उसने।'[2]

इतना ही नहीं उसकी कमाई से घर चलता रहे और पुत्री का विवाह न हो, इसके लिए झूठा लांछन लगाने से भी पिता को परहेज नहीं होता है। कहानी की नायिका अपने पूर्व प्रेमी से अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए कहती है– "फिर मुझे पता चला कि एक–दो जगह तो उन्होंने रिश्ते करने आए लोगों को मेरे दुश्चरित्र होने का भी संकेत दे दिया।' उसकी आँखे छलछला आई।[3] नारी के कामकाजी होने के कारण परिवार के संरक्षण के लिए क्या मूल्य चुकाना पड़ता है, यह इस कहानी का त्रासदीपूर्ण पक्ष है।

लैंगिक भेदभाव के विरूद्ध प्रतिरोध

परिवार व समाज में स्त्री व पुरुष में भेद–भावपूर्ण व्यवहार नया नहीं है। यह भेद–भावपूर्ण व्यवहार जन्म से ही प्रारंभ हो जाता है। बालपन से ही लड़की की बजाय लड़कों को प्रायः लाड–प्यार, खान–पान और उन्हें मिलने वाले अवसरों में प्राथमिकता दी जाती है। ऐसी सोच केवल पुरुषों की ही हो, ऐसा नहीं है, घर की बड़ी बूढ़ी महिलाओं कीभी यही सोच होती है तथा उसी के अनुसार व्यवहार भी करती हैं।

लक्ष्मीनारायण रंगा की कहानी 'चेतना' में कहानी की पात्र 'चेतना' में बचपन से ही लैंगिक असमानता के विरूद्ध परिवार औरसमाज द्वारा किया जाने वाले भेदभाव के विरूद्ध प्रतिरोध की भावना दिखाई देती है। वह न केवल प्रतिरोध करती है वरन् वह यह सिद्ध कर देती है कि स्त्री और पुरूष में भेदभाव करना, स्त्रियों को अवसर न देना तथा पुरूषों को पुरूष होने के कारण विशेषाधिकार दिया जाना अनुचित है। स्त्री–पुरूष की समानता की बात अपनी माँ को समझाते हुए वह कहती है– 'नारी पुरूष जीवन के दो पाँव है, माँ' जीवन को गतिशील बनाने के लिए दोनों पावों को निरंतर चलना पड़ेगा– एक आगे–दूसरा पीछे– फिर दूसरा आगे–पहला पीछे। अगर एक पाँव पिछड़ गया या स्थिर हो गया तो जीवन गतिहीन–जड़ हो जायेगा।'[4] 'चेतना' आज की सजग नारी का प्रतिनिधित्व करती है। आज की नारी अपने स्वबोध के प्रति सचेत है, जिसे अच्छे बुरे का ज्ञान है तथा उसके लिए क्या अच्छा है? क्या बुरा है? इसका निर्धारण वह तर्कपूर्ण ढंग से स्व विवेक के आधार पर करना चाहती है, न कि परिवार व समाज की परंपरागत रूढ़ियों के आधार पर, इसलिए वह इस व्यवसाी का विरोध करती है।

नारी को उपभोग की वस्तु मानने के विरूद्ध विद्रोह

रंगा की कहानियों में नारी को मात्र उपभोग की वस्तु मानने के विरूद्ध विद्रोही स्वर सुनाई देता है। कहानी 'न्यायालय खामोश था' की 'ममता' अपनी दो बेटियों सहित कुँए में कूद जाती है। उसकी दोनों बेटियां 12 वर्षीय आशा और 10 वर्षीय आस्था मर जाती हैं लेकिन वह बच जाती है। पुलिस ओर न्याय व्यवस्था के अन्तर्ग उसके पति को इसके लिए दोषी ठहराया जाता है, तब महिला पात्र 'ममता' अपना दुःख व्यक्त करती हैं। वह कहती है कि वह स्वयं जीना नहीं चाहती। न्यायाधीश के यह पूछने पर कि क्यों? वह बताती है कि उसे इस जीवन और समाज से नफरत हो गई है। वह कहती है कि जिस समाज में नारी सुरक्षित नहीं – जिस समाज में नारी सिर्फ उपभोग की वस्तु है, जिस समाज में नारी पर कदम–कदम पर हैवानी जुल्म ढाये जाते हैं – पल–पल बलात्कार किया जाता है – उस समाज में, मैं जिन्दा रहना नहीं चाहती।'[5]

नारी को मात्र उपभोग की दृष्टि से देखने पर 'कसक' कहानी की पात्र सीता कहती है– 'अे मिनख है कै डांगर? कांई समझ राखी है लुगाई नै कै जिको चावे ज्यूं सोचे? लुगाई कांई रबड़ री मेमड़ी है के ज्यू चावो ज्यूं नचासो? कोई टाफी है के रैपर खोल्यो' र

मूंढे में घाली? कोई पिचको है कै गळगप्प करग्या? कोई डिस्पोजल प्लेट है कै खई र फैंकी? बा कणै बड़बड़ावण लागी उणनै ठााह ही नहीं पड़ी।[6]

ओ समाज रो काई ढाळों है कै लुगाई कठै ई सुरक्षित कोनी। न घर आंगन में – अर न आफिस–बाजार में। बारे–मांय सगळै लुगाई ने खतरा ई खतरा....... ।[7]

समाज में नारी की स्थिति अभी भी बहुत नहीं बदली है। आज भी समाज के कतिपय प्रभावशाली पुरूषों के लिए वह पुरूषों के समान मानवीय गरिमा एवं सम्मान की पात्र होने की बजाय उपभोग की वस्तु ही है। नारीको व्यक्ति की प्रास्थिति में आने में शायद और समय लगे। यदि कोई नारी मजबूर हो, गरीब हो तो कई बार अपनी आर्थिक असमर्थता की कीमत उसे अपने आत्मसम्मान और आबरू से चुकाना पड़ता है।

'नहले पे दहला' कहानी में डॉ. मोहन जो शहर का एक प्रतिष्ठित डाक्टर होता है किन्तु आर्थिक दृष्टि से कमजोर गरीब महिलाओं से, उनके इलाज के एवज में फीस न दे पाने में असमर्थ होने की स्थिति में फीस के रूप मे वह उन महिलाओं से उनका शरीर ही माँग लेता है। अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए एक गरीब महिला अपनी व्यथा एक एनजीओ संचालक महिला से करते हुए कहती है– '........पैसा न हो तो वे शरीर तक की माँग कर लेते हैं। परिवार के सदस्यों के इलाज के बदले उन्होंने कई गरीब नारियों की इज्जत से खिलवाड़ किया है। वे मजबूर औरते सब कुछ सहकर खामोश रहती है। उन्होंने मेरे पति के इलाज की फीस चुकाने के लिए अपनी प्राइवेट क्लिनिक में रात को बुलाया है। आप कुछ करिए।'[8] वह एन.जी.ओ. संचालिका उस डॉक्टर का भण्डाफोड़ करते हुए कहती है 'गुस्सा तो ऐसा आता है कि अगर मेरे हाथ में हो तो मैं तुम्हें सरेआज फाँसी लटकवा दूं। इस कहानी में दो महिला पात्रों का वर्णन उल्लेखनीय है। एक वह जो विवशता वश शोषित होने के लिए बाध्य है तथा दूसरी वह जिसमें ऐसे शोषकों के प्रति विद्रोह की भावना प्रबल है।

दूषित व संकीर्ण सामाजिक सोच पर चोट

आज भी परिवार और समाज में नारी के सहज हास–परिहास और जीवन शैल को स्वीकार नहीं किया जाता। समाज ऐसी नारी के चरित्र को संदेह की दृष्टि से देखता है। परिवार और समाज में नारी को पुत्री, पत्नी, बहन और माता आदि के रूप में सम्मान और स्वीकृति मिलती है किन्तु इन संज्ञाओं से इतर एक नारी के रूप में उसकी स्थिति आज भी अनेक चुनौतियों से भी हुई है। कहानी 'हत्या एक हँसी की' – एक ऐसे ही मुखर लड़की की कहानी है। जिसकी उन्मुक्त हँसी समाज के संकीर्ण सोच की बलि चढ़ जाती है। लेखक उसकी उन्मुक्त हँसी का वर्णन करते हुए कहता है– "वह हँसी का चक्रवात थी और हँसती ही चली जाती थी। तेज नदी की तरह। बात, बिन बात, बस खिलखिलाकर हँसना। किसी से बात करते करते, किसी से नजर मिलते–मिलते वह बेबाक हँस देती थी – एक मीठी हँसी – एक मस्ती भरी हँसी। उसकी हँसी को लेकर लोग तरह–तरह की बातें करते रहते थे।[10] लेखक समाज की दूषित व संकीर्ण सोच पर चोट करते हुए कहता है कि समाज अभी भी इतना उदार नहीं हुआ है कि किसी लड़की के अनायास हँसने का अन्यथा अर्थ न ले। उसके चरित्र पर प्रश्नचिहन न लगाये।

दहेज–प्रथा के विरूद्ध आक्रोश

परिवार के संचालन हेतु विवाह एक पारिवारिक व सामाजिक आवश्यकता है। इसकी पूर्णता के लिए स्त्री व पुरूष दोनों की सहभागिता समान ही होती है किन्तु आज भी लड़की के पिता व परिवार के गरीब होने पर दहेज जैसी सामाजिक बुराई से दो चार होना पड़ता है। इसके कारण अनेक बार नारी को शारीरिक व मानसिक संतापों की असहय भट्टी में झूलसना पड़ता है।

कहानी 'ईंट का जवाब पत्थर' इसी विडम्बना को दर्शाती है। 'ईंट का जवाब पत्थर' – दहेज के लोभ में मानवीय मूल्य को ताक पर रख देने वाले व्यक्ति की कहानी है। विवाह की रस्म शुरू होने के बाद जब फेरे का समय हुआ तो लड़के के पिता ने दहेज की मांग बढ़ा दी। ऐसे विकट समय में लड़के का पिता जेठाराम कहता है – ......"मैं तो पच्चास हजार रूपये नकद दहेज में लूँगा। अगर राजी हो तो ठीक है, नहीं तो बारात बिना विवाह लौट जाएगी। पंडित जी मंत्र बंद कर दो।"[11] ऐसे समय में गांव के ही एक नवचयुवक के हस्तक्षेप से यह विवाह हो जाता है।

दहेज रूपी दानव के कारण अचेतन मन को भी प्रभावित करने वाली कहानी 'नहीं........' की नायिका को रात भर नींद नहीं आती। "जब भी आँख झपकती थी – भयानक सपने उसे घेर लेते थे। फिर पूरी रात उन्हीं भयावने सपनों के दुःखद परिणाम पर सोचते–सोचते गुजर जाती थी। कभी उसे सपना आता था कि वह काँटेदार पेड़ों के जंगल मं अकेली भटक गई है। घोर अंधकार छाया हुआ है। कहीं रास्ता नजर नहीं आता। एक वन मानुस उसे गला घोंटकर मार डालना चाहता है। वह चीखना चाहती है, पर आवाज नहीं निकती। अचानक आँख खुल जाती है। वह हाँफती है– दिल तेजी से धड़कता है। पसीने से तर–बतर है वह। जाग जाने पर भी उसका डर मिटता नहीं और गहरा हो जाता है।[12] इसका मनोचिकित्सकीय इलाज होने पर यह पता चलता है कि उसके पिता ने उसके विवाह में दहेज देने के लिए बहुत सारा ऋण ले रखा था, जिसका उसके प्रत्यक्ष मन या चिंतन पर तो कोई प्रभाव या पीड़ा नहीं दिखाई देती है किन्तु उसके अवचेतन मन पर उसका गहरा असर पड़ा था, जिसकी परिणति इस प्रकार के भयावह सपने के रूप में होता रहा। कथाकार रंगा ने नारी मन की गहराईयों, अन्तर्द्वन्द्वों तथा संघर्षों का सजीव अंकन किया है।

पर्दा प्रथा का प्रतिकार

किसी समय विशेष में किन्हीं कारणों से शुरू हुई पर्दा–प्रथा आज के समय में न केवल अप्रासंगिक है वरन् नारी विकास में बाधक भी। कथाकार लक्ष्मीनारायण रंगा की कहानी 'उठ गये पर्दे' पद्म प्रथा के विरूद्ध नव जागरण की कहानी है। कहानी का पात्र 'सुरेश' गांव का लड़का है जो शहर में पढ़ा–लिखा हैं उसका विवाह शहर की पढ़ी–लिखी लड़की से हो जाता है जो घूंघट प्रथा के पक्ष में नहीं है। किन्तु सुरेश के माता–पिता, परिवार व गांव के लोग घूंघट प्रथा के पक्ष में थे। घर में बैठी पंचायत में सुरेश की माँ, जो खुद भी घूंघट करती थी, अपना थोड़ा सा घूंघट ऊंचा करके बोली– "जब मेरी दादी सास ने घूंघट निकाला। मेरी सास ने अपने से बड़ों को अपना कभी मुंह नहीं दिखाया। मेरा जीवन भी घुंघट में कट गया, तो बहू को घूंघट निकालने में कया तकलीफ है?"[13] सुरेश के पर्दा–प्रथा के विरूद्ध लगातार समझाने पर उसके घर वाले भी पर्दा प्रथा का त्याग करने के लिए सहमत हो जाते हैं।[14]

इस प्रकार समाज में व्याप्त परंपरागत रूढियों और रिवाजों का जिनका अब कोई औचित्य नहीं रह गया है, उनके प्रति मौन रहकर चुपचाप सहने के बजाय उनके विरोध का मुखर स्वर इस कहानी की नारी पात्र में देखने को मिलता है, जो न केवल स्वयं इसका विरोध करती है वरन् अपने पति व परिवार को भी तैयार करती है।

बाल–विवाह व वृद्ध–विवाह के विरूद्ध जागरण

रंगा का कथा–साहित्य बाल विवाह और वृद्ध विवाह जैसी सामाजिक बुराईयों के खिलाफ भी जन जागरण हेतु प्रेरित करता है। इस प्रकार के विवाह का मूल्य अन्ततः नारी को ही असमय गर्भधारण, शारीरिक व मानसिक पीड़ा तथा वैधव्य जीवन जीकर चुकाना पड़ता है। 'जात न पूछो मानव की' कहानी में 'ज्ञान'

कहता है– "बाल–विवाह व वृद्ध–विवाह देश के लिए टी.बी. और कोढ़ है। बाल–विवाह के कारण सन्तान कमजोर व मूर्ख होती है। जिन्दगी भी बीमारी का शिकार रहती है। बाल–विधवाएं समाज के माथे पर कलंक हैं। वृद्ध–विवाह से समाज में पाप, व्यभिचार और वैश्यावृत्ति फैलती है। इन राहू और केतु से तो समाज को बचाना ही चाहिए।"[15]

'मिट गई मौत की प्रथा'– कहानी बाल–विवाह के दुष्परिणाम को रेखांकित करती है। यह न केवल एक सामाजिक कलंक है वरन् कानूनी रूप से प्रतिबंधित भी है। बाल विवाह करने पर दाण्डिक प्रावधान भी है किन्तु समाज मे अभी भी बाल विवाह धड़ल्ले से हो रहे हैं।

बाल–विवाह के परिणाम स्वरूप कम उम्र में ही 'सुगन' की बेटी विधवा हो जाती है। सुगन अपनी पीड़ा गांव के लोगों से साझा करता है। बाल विवाह के कारण कितनी ही लड़कियों को कम उम्र में ही वैधव्य का दुःख उठाना पड़ता है। समाज से बाल विवाह रूपी कलंक के निवारण के उपायों पर गांव की पंचायत में चर्चा हाती है। पंच बाल–विवाह पर अपनी बात रखते हुए कहते हैं– 'सरकार ने तो इसे (बाल–विवाह को) बंद करने के लिए कानून पास कर दिये हैं। उसके अनुसार विवाह के समय लड़की की आयु 18 वर्ष से कम और उलके की आयु 21 र्ष से कम नहीं होनी चाहिए। अगर कोई इससे छोटी आयु में विवाह कराता है, तो उसे सजा हो सकती है। बाल–विवाह अधिनियम में भी साथ लिखा है कि बाल–विवाह करने वाले माता–पिता या जो भी अभिभावक इस कार्य को करवाता है, उसे कैद, आर्थिक दण्ड या दोनों दिये जा सकते हैं।"[16] बाल–विवाह के दुष्परिणाम भी समाज भुगत रहा है किन्तु फिर भी यह रूक नहीं रहा है। इस पर 'दामोदर' प्रश्न करता है– "फिर बाल–विाह बन्द क्यों नहीं होते? पंच इसका उत्तर देते हुए कहते हैं– "इसलिए कि समाज उस कानून का पालन नहीं करता। अगर हम सब कानून को मानने लगें, तो बाल–विवाह बिलकुल बंद हो जाए। एक भयंकर कुप्रथा मिट जाए।"[17] बाल विवाह और वृद्ध–विवाह के विरूद्ध विभिन्न पात्रों के माध्यम से जन जागृति हेतु लेखक का प्रयास समाज को दिशा देने का कार्य करता है तथा प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से समाज की आधी आबादी अर्थात् नारी को जीवन जीने के बेहतर विकल्प देने के लिए प्रेरित करते हैं।

निष्कर्ष

लक्ष्मीनारायण रंगा के कथा–साहित्य के अवगाहन से यह स्पष्ट है कि उनकी कहानियों में नारी विमर्श के सभी पक्षों का सजीव चित्रण मिलता है। पारिवारिक व सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी नारी के संघर्ष को मुखरित किया है। नारी जीवन की विभिन्न कठिनाईयों, समस्याओं को अपनी रचनाओं में समाविष्ट किया है। नारी के साथ किये जाने वाले लैगिक भेदभाव, नारी को उपभोग की वस्तु मानकर यौन–शोषण, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, पर्दा–प्रथा जैसे कुरीतियों के विरूद्ध सजग लेखक ने उनके विरोध में नारी स्वर को अभिव्यक्ति प्रदान की है। रंगा जी कहानियों में महिलाओं पर होने वाले अत्याचार से हताशा नहीं है बल्कि आक्रोश हैं वे संघर्ष करने की प्रेरणा देती है। न केवल भौतिक स्तर पर वरन् मनोवैज्ञानिक स्तर पर नारी के अन्तसंघर्ष को लेखक ने उकेरा है।

संदर्भ

1. मुळक "पीळा पत्ता" कहानी संग्रह, पृ. 8
2. कसक कहानी, "हत्या एक हँसी की" कहानी संग्रह, पृ. 32
3. वही, "हत्या एक हँसी की" कहानी संग्रह, पृ. 32
4. 'चेतना' कहानी, "हत्या एक हँसी की" कहानी संग्रह, पृ. 15–16
5. न्यायालय खामोश था, कहानी, "हत्या एक हँसी की" कहानी संग्रह, पृ. 28
6. मुळक "पीळा पत्ता" कहानी संग्रह, पृ. 9
7. वही "पीळा पत्ता" कहानी संग्रह, पृ. 9
8. नहले पे दहला, "हत्या एक हँसी की" कहानी संग्रह, पृ. 42
9. वही, "हत्या एक हँसी की" कहानी संग्रह, पृ. 44
10. हत्या एक हँसी की, "हत्या एक हँसी की" कहानी संग्रह, पृ. 10
11. ईंट का जवाब पत्थर, अंधेरों का अन्त, पृ. 18
12. नहीं....., "हत्या एक हँसी की" कहानी संग्रह, पृ. 39
13. उठ गये पर्दे, अंधेरों का अन्त, पृ. 23
14. वही, अंधेरों का अन्त, पृ. 23
15. जात न पूछो मानव की, अंधेरों का अन्त, पृ. 17
16. मिट गई मौत की प्रथा, अंधेरों का अन्त, पृ. 26
17. वही, अंधेरों का अन्त, पृ. 26